न्यायदर्शन में 16 पदार्थ

B.A. (H) II Year डॉ. विकास सिंह

Paper - 3. Unit (IV)

तात्पर्य है कि प्रमाणादि सोलह पदार्थों के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है। ये सोलह पदार्थ हैं -

1 - प्रमाण

2 - प्रमेय

3 - संशय

4 - प्रयोजन

5 - दृष्टान्त

6 - सिद्धान्त

7 - अवयव

8 - तर्क

9 - निर्णय

10 - वाद

11 - जल्प

12 - वितण्डा

13 - हेत्वाभास

14 - छल

15 - जाति

16 - निग्रहस्थान

प्रथम सूत्र से केवल मात्र उद्देश का ही नहीं, अपितु अनुबन्ध चतुष्टय का भी ज्ञान होता है। विषय, अधिकारी, प्रयोजन व सम्बन्ध ये अनुबन्ध चतुष्टय हैं। न्याय दर्शन में प्रमाणादि सोलह पदार्थ विषय हैं, मोक्ष की इच्छा रखने वाला प्रमाणादि पदार्थों

का जिज्ञासु उसके अध्ययन का अधिकारी है। येन प्रयुक्तः प्रवर्तते, तत् प्रयोजनम्'[1] इस भाष्यपंक्ति के अनुसार जिससे प्रेरणा पाकर व्यक्ति कर्म में प्रवृत्त होता है, उसे प्रयोजन कहते हैं। न्याय का प्रयोजन दुःख निरास कर मोक्ष की प्राप्ति करवाना है। सम्बन्ध की चर्चा करते हुए जयन्तभट्ट ने कहा है-

'अभिधेयस्य शास्त्रस्य च वाच्यवाचकभावलक्षणः सम्बन्धः शास्त्रार्थस्य निःश्रेयसस्य च साध्यसाधनभावलक्षणः सम्बन्धः तदाक्षर निर्देशादेव सिद्धः।'[2]

अर्थात् प्रतिपाद्य विषय और शास्त्र में वाच्य-वाचक भाव सम्बन्ध है, शास्त्र के अर्थ और निःश्रेयस में साध्य-साधन भाव सम्बन्ध है और वह सम्बन्धियों के निर्देश से ही सिद्ध है।

इस तरह न्याय के प्रथम सूत्र से उद्देश के साथ ही अनुबन्ध चतुष्टय का भी ज्ञान होता है।

5. न्यायदर्शन में लक्षण (षोडश पदार्थ के सन्दर्भ में)

न्यायसूत्रकार ने प्रथम सूत्र में उद्देश रूप में 16 पदार्थों को कहा है, प्रथम अध्याय के प्रथम व द्वितीय आन्हिकों में यथास्थल इनका लक्षण कहा है।

(1) प्रमाण - उन सोलह पदार्थों में प्रमाण का उद्देश सर्वप्रथम किया गया है। न्यायसूत्रकार ने प्रमाणसामान्य का लक्षण नहीं दिया है, किन्तु उद्देश के अनन्तर उसका विभाग, उसके अवान्तर भेदों का प्रदर्शन करते हुए कहा है-

प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि।'[3]

1- न्या. भा., पृ० - 8

2- न्या. म., पृ० - 23

3- न्या. सू. 1.1.3

इस सूत्र पर प्रश्न उठना स्वाभाविक है, क्योंकि जब तक प्रमाण का सामान्य परिचय न होगा तब तक उसके सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासा नहीं हो सकती. अतः सूत्रकार को प्रमाण का सामान्य परिचय देने हेतु उसका लक्षण बताना चाहिए था, फिर उन्होंने ऐसा न कर उसका विभाग क्यों कर दिया? इस प्रश्न का उत्तर भाष्यकार वात्स्यायन ने इस तरह दिया है -

"उपलब्धिसाधनानि प्रमाणानीति समाख्यानिर्वचनसामर्थ्यादवगन्तव्यम्। प्रमीयतेऽनेनेति करणार्थाभिधानो हि प्रमाणशब्दः।"[1]

तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण प्रमाण उपलब्धि अर्थात् ज्ञान के साधन होते हैं, ऐसा 'प्रमाणानि' इस संज्ञा के निर्वचन से जानना चाहिए। 'प्रमीयतेऽनेन' इस अर्थ में अर्थात् करण अर्थ के बोधक ल्युट् प्रत्यय परे रहते √मा धातु से प्र उपसर्ग लगाकर प्रमाण शब्द निष्पन्न हुआ है जिससे प्रमाण का अर्थ हुआ प्रकृष्ट ज्ञान का साधन।

न्यायमञ्जरीकार ने प्रमाण का लक्षण दिया है -

"अर्थपरिच्छित्तिसाधनानि प्रत्यक्षादीनि प्रमाणानि।"[2]

अर्थात् अर्थ के स्वरूप को निश्चित रूप से जानने के साधन प्रत्यक्ष आदि प्रमाण हैं। तर्कभाषाकार ने 'प्रमाकरणं प्रमाणं'[3] कहकर प्रमा (यथार्थ ज्ञान) का करण (साधन) प्रमाण को माना है।

② प्रमेय :- न्यायसूत्रकार ने प्रमेय का भी लक्षण प्रस्तुत नहीं किया है. अपितु प्रमेय न्यायदर्शन में कितने हैं, यह गिनाया है -

'आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनःप्रवृत्तिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम्'[4]

---

1 - न्या. भा., पृ० - 24

2 - न्या. म., पृ० - 24

3 - त. भा., पृ० - 16

4 - न्या. सू. 1.1.9